## प्रवचन नं. ३५ गाथा-९-१० ता. १६-७-७८ रविवार अषाढ सुदी-११ सं.२५०४

समयसार ९-१० गाथा की टीका फिर से `**प्रथम तो जो श्रुत से केवल शुद्धात्मा को जानते है, वे श्रुतकेवली है,**' क्या कहा ? भावश्रुतज्ञान निर्विकल्प शांति समाधी के द्वारा आत्मा को जानते है, वह आत्मा को जाननेवाले परमार्थ (से) निश्चय श्रुतकेवली कहने में आते हैं। समझ में आया ? आत्मवस्तु जो आत्म पदार्थ उसे जो ज्ञान, निर्विकल्प ज्ञान होकर राग का भी पक्ष छोड़कर निर्विकल्पशांति, समाधि के द्वारा जो त्रिकाली आत्मा को जाने, आहाहा ! समझ में आया ? सूक्ष्मबात है भाई ! परम सत्य बहुत सूक्ष्म। यह आत्मा चीज जो है अनंत आनंद और अनंतज्ञान सम्पन्न प्रभु, जिसका स्वभाव है उसका तो माप क्या ? अमाप ज्ञान और अमाप दर्शन और आनंद आदि एकरूप वस्तु, अनंतगुणों में एकरूप वस्तु द्रव्य उसको जो ज्ञान वर्तमान राग रहित होकर निर्विकल्पशांति द्वारा द्रव्य को जानता है उसको निश्चय श्रुतकेवली कहते हैं। सूक्ष्मबात है बाबूलालजी ! आहाहा !

जो यह आत्मा वस्तु है। परिपूर्ण अंतर (परिपूर्ण) संपदा से भरा पड़ा प्रभु उसको जो वर्तमान ज्ञान निर्विकल्प अर्थात राग की अपेक्षा छोड़कर निर्विकल्प शांति और समाधि, उसके द्वारा वह ज्ञान आया। इसके द्वारा आत्मा को जाने यह निश्चय श्रुतकेवली कहा जाता है। समझ में आया ? ऐसी सूक्ष्मबात है। यहाँ तो आत्मा को जिसने जाना यह निश्चय श्रुतकेवली है परंतु यह किसप्रकार जाना ? अंतर में राग से भिन्न होकर जो ज्ञान (की) शांति और वीतरागी पर्याय हुई उसके द्वारा जो आत्मा जानने में आया, इसके द्वारा सीधा आत्मा जानने में आया, उसको निश्चयश्रुतकेवली कहते हैं।

सभी बात जगत से निराली है भाई ! शब्द भी अलग, भाव भी अलग- ऐसा है ख्याल है न ! आहाहा ! मूल चीज पूरी अंतर वस्तु भगवान आत्मा नित्यवस्तु ध्रुववस्तु, शाश्वतवस्तु है। वह कहीं नई उत्पन्न नहीं हुई, उसका अंश भी नष्ट होगा ऐसी चीज नहीं - ऐसा शाश्वत प्रभु अविनाशी आत्मा उसको वर्तमान शांति, राग से रहित होकर राग से भिन्न होकर अपनी शांति और ज्ञान द्वारा जो आत्मा को अनुभवे, आत्मा को जाने, उनको यहाँ निश्चय सच्चा श्रुतकेवली कहा जाता है। कहो राजमलजी ! देवीलालजी ! आहाहा ! हाँ ! यह परमार्थ है।

और जो सर्व श्रुतज्ञान को जानते हैं प्रथम तो यह (कहा) ***जो ज्ञान अपने को जानता है उस ज्ञान में परिपूर्ण चीज आ गई क्योंकि परिपूर्ण को जाननेवाली ज्ञान***

***पर्याय उस ज्ञान में सर्वश्रुत स्व को भी जाने और यह ज्ञान पर को भी जाने।*** आहाहा ! ***- ऐसा आत्मा का ज्ञान जो आत्मा को सीधा जाने यह तो निश्चय श्रुतकेवली।*** परंतु वह ज्ञान जो है और यह स्व को जाने एवं पर को जाने यह स्व को जाने यह ज्ञान की पर्याय में पर को जानने का ज्ञान तो आ गया। आहाहा ! ***यह स्व-पर को जाने - ऐसा जो ज्ञान उसको व्यवहार श्रुतकेवली कहते हैं वस्तु को त्रिकाली को जाने यह निश्चय श्रुतकेवली है।*** आहाहा ! यह तो अलौकिक बातें है बापू !

जगत से बिलकुल निराली... अभी तो चारों तरफ विरोध उठा है। सर्व श्रुतज्ञान को जानते है वह श्रुतकेवली है - यह व्यवहार है क्योंकि जो ज्ञान है जानने-जानने यह जाननेरूप शक्ति स्व को भी जाने यह जानने (वाला) पर को भी जाने यह तो साधारण बात है। यह स्व-पर को जाननेवाला ज्ञान (उसको) व्यवहार श्रुतकेवली कहते हैं। नवरंगभाई ! दोनों एक जैसे नहीं। आहाहा ! सूक्ष्मबात बापू ! यह तो परम सत्य का सागर, परम सत्य सागर प्रभु जो वस्तु है, वह तो परिपूर्ण स्वभाव से भरी पड़ी है। वस्तु में अपूर्णता विपरीतता कि अशुद्धता होती नहीं। यह पूर्ण वस्तु जो है आत्म वस्तु, उसको जो निर्विकल्प शांति द्वारा जो ज्ञान साथ में है, यह शांति द्वारा ज्ञान आत्मा को जानें यह तो परमार्थ हुआ, जो ***परमपदार्थ को जाने सो परमार्थश्रुतकेवली कहते हैं।*** समझ में आया ? और सर्वश्रुतज्ञान को जाने, यह ज्ञान की पर्याय चाहे तो बारह अंग को जाने और यह ज्ञान की पर्याय स्व को जाने यह ज्ञान अब बस। इस ज्ञान की पर्याय यह त्रिकाली को स्व को जाने और यहाँ बाह्यज्ञान है उसको भी जानें, उस ज्ञान को व्यवहार... पर्याय है न ? भेद है न ? तब व्यवहार श्रुतकेवली कहने में आया। सूक्ष्मबात बापू ! ओहोहो !

अभी दिखावा बाहर का यात्रा और यह एवं वह आहाहा ! भक्ति एवं पूजा एवं उसमें समझें धर्म हो गया ? आहाहा ! अंतर की वस्तु कोई दूसरी है। आहा ! अस्ति है न ! है न वस्तु ! है, यह कोई वस्तु अनादि की है और अनंतकाल रहेगी - ऐसी यह वस्तु है, और यह चीज है उसका स्वभाव जो है वह भी परिपूर्ण त्रिकाल है। वस्तु का स्वभाव जैसी वस्तु त्रिकाल है - ऐसा उसका स्वभाव ज्ञान, दर्शन, आनंद यह स्वभाव और स्वभाववान यह दोनों अनादि वस्तु शाश्वत है। आहाहा ! इस चीज को जो सम्यग्ज्ञान शांति द्वारा जाने, ***तब तो यह परमार्थ जाना तब उसे परमार्थ श्रुतकेवली कहते हैं, और जो ज्ञान स्व को जाने एवं पर को जाने, यह ज्ञान इस ज्ञान को यहाँ व्यवहारश्रुतकेवली कहते हैं।*** समझ में आया ?

यहाँ दो पक्ष लेकर परीक्षा करते है उपरोक्त सर्वज्ञान आत्मा है कि अनात्मा ? क्या कहा ? जो ज्ञान है न ज्ञान, स्व को जाने और पर को जाने, ऐसी जो शक्ति

ज्ञान की, यह ज्ञान है यह आत्मा है कि अनात्मा ? यह आत्म स्वरूप (के) साथ संबंध है ? कि किसी अनात्मा के साथ संबंध है ? आहा ! जानन-जानन-जानन स्वभाव... इसका आत्मा के साथ संबंध है ? यह आत्मा है ? कि रागादिक पर के साथ संबंध है कि अनात्मा है ? यह आत्मा है ? कि रागादिक पर के साथ संबंध है कि अनात्मा है ? समझ में आया ?

यह पढ़ाई अलग जाति की है भाई ! आहाहा ! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा की कॉलेज है। इस कॉलेज की चीज इसने अनंतकाल में जानी नहीं उसकी बात है, शेष तो थोथा इस जगत का बाहर की जानकारी और शास्त्र की जानकारी अकेली... उसको तो यहाँ व्यवहार में लिया नहीं।

अपना और पर का ज्ञान दोनों (के) इस ज्ञान को व्यवहारश्रुतकेवली कहते हैं और उसको सर्वश्रुत कहते हैं, समझ में आया ? अभ्यास चाहिए भाई, यह तो एकदम अभ्यास बिना (नहीं समझ में आये)... अब यह कहते हैं जिस ज्ञान को व्यवहार कहा, जो ज्ञान है, यह ज्ञान आत्मा को सीधा जाने यह तो निश्चय। अब जो ज्ञान है, यह ज्ञान क्या है ? कि यह ज्ञान आत्मा का ज्ञान है कि जड़ का।

दो पक्ष किये। दो पक्ष परीक्षा करके... `सर्वज्ञान आत्मा है कि अनात्मा ?' **`अनात्मा का पक्ष लिया जाय तो यह ठीक नहीं'** यह जानन जानन जानन जो भाव यह कर्म का है शरीर का है राग का है तब यह पक्ष सत्य नहीं, यह ज्ञान उसका है नहीं। ज्ञान उसको जानता है - यह बात यहाँ नहीं। परंतु यह ज्ञान है किसका ? ज्ञान स्व को जाने और पर को जाने, यह ज्ञान है किसका ? यह ज्ञान आत्मा का है कि अनात्मा का ? दया, दान, राग, शरीर वाणी उसका ज्ञान है यह ? समझ में आया ? यदि अनात्मा का पक्ष लिया जाय तो यह ठीक नहीं क्योंकि जानना, जो जानना है स्व को जाननेवाली पर्याय वह पर को जाने (- ऐसा) पर्याय ज्ञान यह अनात्मा है, राग है या शरीर है शरीर के साथ उसका संबंध है - ऐसा ठीक नहीं। यह ज्ञान का तो आत्मा के साथ संबंध है। समझ में आया ? आहा !

ऐसी बात को फुरसत कहाँ मिले ? व्रत पालो और उपवास करो एवं २२ घण्टे धंधा करे, यह एक दो घण्टे मिलें वहाँ यह करो परंतु यह चीज क्या है ? वस्तु क्या है और वस्तु में जानने की शक्ति ताकत कितनी है ? वस्तु को जाने जो ज्ञान की ताकत वह तो निश्चय है, परंतु उस निश्चय को जाननेवाला जो ज्ञान है, और वह ज्ञान भले पर को भी जाने, परंतु उस ज्ञान की पर्याय स्वपर जानने की ताकतवाला ज्ञान है, यह ज्ञान आत्मा के साथ संबंध रखता है कि जड़ के साथ संबंध रखता है ? यदि जड़ के साथ संबंध रखता है यह ठीक नहीं, कि जानने-देखनेवाली जो

दशा है। (उसका) राग और शरीर के साथ संबंध है नहीं। आहा ! समझ में आया ? सूक्ष्मबात है भाई ! आहा !

**क्योंकि जो समस्त जड़रूप अनात्मा, आकाशादि पदार्थ है न ?** यह परमाणु शरीरादि पांचद्रव्य है, आत्मा के अलावा जड़ पांचद्रव्य है वस्तु, धर्मास्ति-अधर्मास्ति, आकाशास्ति, काल और पुद्गल, **उनका ज्ञान के साथ तादात्म्य बनता ही नहीं।** जड़ के साथ... जानना (ज्ञान)... भले यह वर्तमान दशारूप ज्ञान, (वह) ज्ञानरूप है, वर्तमानदशा ज्ञानरूप यह वर्तमान दशा का ज्ञान यह जड़ के साथ संबंध रखता है कि यह ज्ञान आत्मा के साथ संबंध रखता है ? कि यह ज्ञान आत्मा के साथ तादात्म्य तद्रूप है कि ज्ञान, राग और शरीर के साथ तद्रूप है ? अब ऐसी बातें ! आहा ! तब (जड़ पांचद्रव्यो) उनके ज्ञान के साथ तादात्म्य बनता नहीं। क्योंकि उनमें ज्ञान सिद्ध नहीं। राग, दया, दान, व्रतादि का भाव और शरीर, वाणी का भाव जड़ उसके साथ ज्ञान का संबंध है नहीं उसमें ज्ञान है नहीं, ज्ञान उसका है नहीं, ज्ञान का संबंध उसके साथ नहीं। आहाहा ! उसमें ज्ञान (की) सिद्धि नहीं इसलिये अन्य पक्ष का अभाव होने से ज्ञान आत्मा ही है, ज्ञान आत्मा ही है। ज्ञान राग है, ज्ञान शरीर है - ऐसा नहीं। ***चाहे तो ज्ञान, राग और शरीर को जाने, जानने पर भी वह ज्ञान पर्याय राग और शरीर की नहीं। आहाहा ! जानन शक्ति जो है यह आत्मा के साथ संबंध रखती है।*** समझ में आया ? भाई ! ऐसी बात है। आहाहा ! वस्तु त्रिकाली और उसको जाननेवाले ज्ञान को... उसको तो सर्वश्रुत कहकर पर को भी जाने इस अपेक्षा से सर्वश्रुत कहा, फिर भी वह ज्ञान स्वपर प्रकाशने की, जानने की ताकत रखता है। उस ज्ञान को व्यवहार श्रुतकेवली कहा। ***क्योंकि वह ज्ञान आत्मा के साथ संबंध रखता है भेद होकर कि यह ज्ञान सो आत्मा तो यह तो उसके साथ संबंध है, भले यहाँ व्यवहार कहा परंतु यह ज्ञान आत्मा के साथ संबंध रखता है, यह ज्ञान राग और शरीर के साथ संबंध नहीं रखता।*** आहाहा ! समझ में आता है कुछ ?

**`इसलिये अन्य पक्ष का अभाव होने से ज्ञान आत्मा ही है'** ज्ञान आत्मा ही है इतना व्यवहार हो गया। ***ज्ञान आत्मा को जाने यह तो निश्चय हुआ अब यह ज्ञान आत्मा ही है - ऐसा भेद हुआ तो इस ज्ञान को व्यवहार कहा।*** आहाहा ! परंतु यह ज्ञान आत्मा है, यह ज्ञान राग और शरीररूप है नहीं। आहाहाहा ! **`यह पक्ष सिद्ध हुआ'** इसलिये श्रुतज्ञान भी आत्मा ही है, कौन ? ज्ञान हो ! (जो) ज्ञान व्यवहार श्रुत कहा था न ! व्यवहार श्रुतज्ञान... यह श्रुतज्ञान भी आत्मा ही है। आत्मा तो आत्मा है ही परंतु श्रुतज्ञान भी आत्मा है, क्योंकि उसके साथ तादात्म्य संबंध

है। आहाहा ! - ऐसा होने से **`जो आत्मा को जानता है वह श्रुतकेवली है - ऐसा ही घटित होता है।'**

जो आत्मा को जाने, भगवान पूर्णानंद प्रभु... अस्तिरूप मौजूदगी चीजरूप और मौजूदगी अस्ति चीज है। वह अपूर्ण और विपरीतरूप होती नहीं। पूर्ण और अविपरीत स्वभाव से भरा पड़ा प्रभु है। (निजात्मा) उसको जो जानें वह तो निश्चय श्रुतकेवली है। समझ में आया ? - ऐसा होने से आत्मा को ही जानते वह तो श्रुतकेवली ही है - ऐसा ही घटित होता है, आहाहा ! और वह **`श्रुतज्ञान भी आत्मा है'** यह तो व्यवहार में गया। **`- ऐसा होने से जो आत्मा को जानता है वह श्रुतकेवली - ऐसा घटित होता है' `और यह तो परमार्थ ही है'** आहाहा ! जिस ज्ञान ने आत्मा को ज्ञेय बनाकर आत्मा को जाना... जो ज्ञान (अनादि से) अकेला पर को जानता है अपनी पर्याय में पर को जानते हैं यह तो ऐकान्तिक ज्ञान, यह ज्ञान ही नहीं, समझ में आया ?

परंतु जो ज्ञान स्व को जानता है और पर को भी भले जाने, ऐसी तो ताकत उसमें स्वपरप्रकाशक है। परंतु उस ज्ञान का संबंध अनात्मा-शरीर वाणी कर्म से है नहीं, इस ज्ञान का संबंध आत्मा के साथ है। आहाहा ! `ज्ञान सो आत्मा' - ऐसा भेद करके कहा ना ? **`ज्ञान सो आत्मा'** आत्मा सो आत्मा - ऐसा अनुभव हुआ यह तो निश्चय हुआ। परंतु ज्ञान सो आत्मा उसको जाननेवाला ज्ञान और वह ज्ञान पर को भी जाने यह ज्ञान आत्मा के साथ संबंध रखता है... स्व और पर को जानने का ज्ञान, आत्मा के साथ संबंध रखता है। पर को जाने इसलिये पर से संबंध रखता है - ऐसा नहीं है। आहाहाहा ! - ऐसा सूक्ष्म है।

क्या करना ? भाई ! अनंतकाल से चौराशी के अवतार (में) यह जन्म-मरण कर रहा है, चौराशी के अनेक भव... अनादि का है, तब रहा कहाँ ? भव भ्रमण में रहा। आहाहा ! यह भव भ्रमण में तो दुःख है अकेला, चाहे तो स्वर्ग का देव हो और मनुष्यों में राजा हो, दुःखी है बिचारा, राग-द्वेष की पीड़ा में आकुलता में पीड़ित होता है। आहाहा ! उसे पीड़ा से छूटना उसका उपाय क्या ? कि यह जो ज्ञान स्व सन्मुख अपने को जाने तब यह श्रुतकेवली अर्थात परमार्थ से आत्मा को जाना तब उसका भव भ्रमण रहा नहीं। क्योंकि आत्मा में भव और भव का भाव है नहीं। परंतु अपना भाव परिपूर्ण है। आहाहा ! यह परिपूर्ण भगवान को (ज्ञायक को) जाने जो ज्ञान, यह तो परमार्थ हो गया।

परंतु जो ज्ञान उसको जाने और पर को जाने - ऐसे ज्ञान को व्यवहार कहा, परंतु वह ज्ञान का संबंध किसके साथ है ? पर को जानता है इसलिये पर के

साथ संबंध है ? समझ में आया ? जानती तो पर्याय है अपनी अपने को और पर दोनों को, जानने की दशा तो स्व-पर दोनों को जानती है। फिर भी ज्ञान का संबंध राग और शरीर-कर्म, जड़ के साथ है नहीं। यह संबंध तो आत्मा के साथ है। आहाहा ! - ऐसा सूक्ष्म है।

लोगों को अंतर उतरना क्या चीज है अंदर, (परमार्थ) प्रभु ! यह शरीर वाणी तो जड़ है। उसका ज्ञान हो, परंतु उसका ज्ञान यह ज्ञान शरीर के साथ संबंध रखते है - ऐसा नहीं, शरीर का ज्ञान हो, पर यह ज्ञान शरीर के साथ संबंध रखता है - ऐसा नहीं। यह शरीर का ज्ञान हो, यह स्वपरप्रकाशक ज्ञान की पर्याय आत्मा के साथ संबंध रखती है। नवरंगभाई ! आहाहा ! समझ में आया ? यह ऐसी बात है, भाई ! आज रविवार का दिन है और सभी बच्चे आये हैं न आज बहुत ! आहाहा !

पूर्णानंद प्रभु... पूर्ण स्वभाव की वस्तु है न, यह पूर्ण ही होती है, वस्तु है उसमें अपूर्णता कि विपरीतता कि अशुद्धता होती नहीं। ये भी पता नहीं अभी। वस्तु है अनादि चैतन्यघन प्रभु, यह तो परिपूर्ण शक्ति और परिपूर्ण स्वभावसे परिपूर्णवस्तु है। इस परिपूर्ण चीज को जो ज्ञान जाने उस ज्ञान को व्यवहार श्रुतज्ञान कहते हैं, परंतु जो ज्ञान उसको जानें अंदर में यह आत्मा को जाने उसे निश्चय कहते हैं। आहाहा ! - ऐसा है। - ऐसा होने से जो आत्मा को जानता है वह श्रुतकेवली है, यह सब घटित होता है और वह परमार्थ है।

`**इसप्रकार ज्ञान और ज्ञानी के भेद से कहनेवाला जो व्यवहार** (**है**)' देखो, देखा ? क्या कहते हैं जो यहाँ ज्ञान वर्तमान ज्ञान है, यह ज्ञान स्व को जाने और पर को जाने परंतु उस ज्ञान की पर्याय को व्यवहार कहा। क्योंकि यह ज्ञान सो आत्मा - ऐसा भेद हो गया न ? आत्मा अकेला (ज्ञेय हो) तो निश्चय हो गया है ? आहाहा ! `**ज्ञान और ज्ञानी के भेद से कहनेवाला जो व्यवहार उसमें भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है।**' आहाहा ! ज्ञान स्व और पर को जाने वह ज्ञान सो आत्मा, तब इतना भेद किया अतः व्यवहार हो गया।तब व्यवहार ने बताया है निश्चय को। जो ज्ञान स्व का हुआ और पर का हुआ, उस ज्ञान ने आत्मा को जाना और यह ज्ञान सो आत्मा - ऐसा भेद करके व्यवहार कहा, तो व्यवहार ने बताया क्या ? त्रिकाली वस्तु को, तब उसमें इतना व्यवहार आया, अतः उसको व्यवहार कहा जाता है, परंतु इस व्यवहार का आश्रय लेने से निश्चय होता है - ऐसा नहीं इस व्यवहार का आश्रय तो त्रिकाली है। आहाहा ! सूक्ष्मबात बहुत आयी। फिर से लिया न हमारे बाबूभाई ने कहा, फिर से लो बाबूलालजी कहते हैं। बात सच्ची यह तो चाहे जितनी बार लो, बाबूलालजी ! अपार वस्तु है। आहाहा !

चैतन्य चमकता हीरा अंदर है, चैतन्य चैतन्य चैतन्य के चैतन्यप्रकाश का चमकता हीरा अंदर, परिपूर्ण चमकता हीरा (ज्ञायक) स्वभाव भगवान है। आहाहा ! ऐसे परिपूर्णशक्ति के स्वभाव से भरा पड़ा परिपूर्ण प्रभु है। ऐसे परिपूर्ण प्रभु को जो ज्ञान सीधा परिपूर्ण को जानता है, वह तो श्रुत निश्चय परमार्थ हो गया। परंतु जो ज्ञान स्व को जाने और पर को जाने उस ज्ञान को व्यवहार कहा, क्योंकि ज्ञान सो आत्मा - ऐसा भेद डालकर कहा इसलिये व्यवहार हुआ ? समझ में आया ?

**`इसप्रकार ज्ञान और ज्ञानी के भेद से'** ज्ञानी अर्थात आत्मा, ज्ञान शब्द से वर्तमान ज्ञान पर्याय, ऐसे भेद से कहनेवाला यह व्यवहार उससे भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है। जानने की (दशा) ज्ञान सो आत्मा और यह आत्मा को जानें, इस परमार्थ को व्यवहार से बताया है। व्यवहार ने व्यवहार को बताया - ऐसा नहीं, व्यवहार ने बताया परमार्थ को। आहाहा ! (श्रोता :- व्यवहार का इतना उपकार मानना) इतना व्यवहार स्थापन करने योग्य है। है इतना, परंतु वह व्यवहार के आश्रय से निश्चय होता है निश्चय - ऐसा नहीं। आहाहा !

बहुत फर्क है भाई ! अरे ! अभी तो बहुत गड़बड़ हो गई है संप्रदाय में तो, दया पालो व्रत करो और उपवास करो, अब यह तो राग की क्रिया है, वह (देरावासी) कहें भक्ति करो और यात्रा करो। आज आये थे यहाँ बड़े (संघ) पालीतानावाले, बड़ा संघ आया था। घोघा भावनगर जाता था, यहाँ रुके थे, देखा था, यह बस यात्रा करो तो हम तिर गये। यह तो शुभराग की क्रिया जो मंदराग करते हो तो यह यात्रा और उसका नाम शुभराग पुण्य है। यह कोई धर्म नहीं और वह धर्म का कारण भी नहीं। आहाहा ! धर्म का कारण तो प्रभु त्रिकाली आत्मा जो है। यह वर्तमान आनंद और शांति एवं समकित का कारण तो यह आत्मा है। आहाहा ! और इस आत्मा को जिसने जाना उसकी पर्याय में आनंद और समकित आदि होता है। तब यह पर्याय स्व को और पर को जानती है, उस ज्ञान को `ज्ञान सो आत्मा' इतना भेद हुआ, यह व्यवहार कहने में आया, इसको व्यवहार कहने में आया। फिर भी यह ज्ञान व्यवहार है, यह अकेले व्यवहार को बताते है - ऐसा नहीं। यह ज्ञान सो आत्मा, यह जानता है न, जानते है न ? यह जानते है यह आत्मा इसप्रकार आत्मा को बताया। व्यवहार से व्यवहार श्रुतकेवली ने व्यवहारज्ञान से भी आत्मा को बताया। आहाहाहा ! ऐसी बातें है।

यह किस जाति का धर्म यह ? बापू क्या कहें ? परम सत्य वस्तु परमसत्य क्योंकि प्रभु तुम हो, यह सर्वज्ञ स्वरूपी तुम हो भाई। तुम्हें खबर नहीं। तुम आत्मा जो हो यह ज्ञान स्वरूपी है। चैतन्यप्रकाश स्वरूप है, चैतन्यप्रकाश स्वरूप है, तब

यह चैतन्यप्रकाश का परिपूर्ण प्रकाश है, परिपूर्ण अर्थात यह सर्वज्ञ प्रकाश स्वरूप है। आहाहा ! उसका शक्तिरूप सर्वज्ञ प्रकाश स्वरूप आत्मा का है `ज्ञ' स्वरूप कहो प्रभु यह `ज्ञ' का परिपूर्ण स्वरूप सर्वज्ञपना कहो तब यह सर्वज्ञ स्वभावी प्रभु आत्मा है, परंतु वह ज्ञान की पर्याय त्रिकाली को अनुभवे, निर्विकल्प समाधी, शांति द्वारा तब तो मूल चीज को अनुभवे यह तो परमार्थ हुआ। परंतु वह पर्याय जो स्वपर को जानती है, उस पर्याय को व्यवहार क्यों कहा कि वह तो भेद है। त्रिकाली वस्तु में ज्ञान गुण - ऐसा पर्याय भेद हुआ इस कारण से व्यवहार कहा, परंतु व्यवहार ने बताया है परमार्थ को। आहाहाहा ! समझ में आता है कुछ ?

यह व्यवहार है अवश्य, परंतु वह व्यवहार बताते हैं त्रिकाली परमार्थ स्वरूप चिदानंद प्रभु, इसलिये व्यवहार का संबंध ज्ञान का भी आत्मा के साथ में है। इस ज्ञान का संबंध पर के साथ नहीं। आहाहाहा ! जिस ज्ञान को व्यवहार कहा, यह क्योंकि ज्ञान सो आत्मा ऐसा भेद होने से, परंतु वह ज्ञान अपने को और पर को जाने इसलिये वह ज्ञान पर से संबंध रखता है - ऐसा नहीं यह ज्ञान तो आत्मा के साथ संबंध रखता है। आहाहा ! समझ में आया ?

नये व्यक्तियों को - ऐसा लगे कि यह क्या कहते है यह तो, जैनदर्शन में वीतरागता (भरी है), बापू ! मार्ग - ऐसा है भाई ! सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ और तुम भी प्रभु सर्वज्ञ स्वरूपी हो उन सर्वज्ञ ने जो प्रगट किया जो उनकी आज्ञा में आया वह इस मार्ग पर आया। आहाहा !

दूसरी बात, कि राग से आत्मा जानने में आता है, यह तो व्यवहार ही नहीं, ज्ञान से आत्मा जानने में आता है यह उसको यहाँ व्यवहार कहा। आहाहा ! और उस व्यवहार ने राग को बताया - ऐसा नहीं उस व्यवहार ने आत्मा को बताया है। आहाहा ! यह जानन पर्याय जो अवस्था, स्वपर जानने की यह शक्ति वस्तु जो त्रिकाल (ज्ञायक) है उसका वह ज्ञान है - ऐसा यह बताते है। व्यवहार निश्चय को बताते है। आहाहा ! व्यवहार-व्यवहार ऊपर लक्ष्य कराता है - ऐसा नहीं। समझ में आये इतना समझना प्रभु, यह तो कोई अलौकिक बातें है, क्या कहे ? आहाहा !

उससे भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है, क्या कहा ? जो जानन, जानन, जानन आत्मा को जाने और पर को जाने - ऐसा ज्ञान, यह ज्ञान आत्मा को बताता है। इसका आत्मा के साथ संबंध है। इस ज्ञान ने परमार्थ को बताया है न ? और उससे भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है। ज्ञान सो आत्मा - ऐसा परमार्थ को बताया। इस ज्ञान ने परमार्थ वस्तु को बताया। व्यवहार ने परमार्थवस्तु बताया। ***ज्ञानरूपी वर्तमान पर्याय जो भेदरूप व्यवहार उसने भी अभेद ज्ञायक को बताया।*** आहाहाहा ! बहुत

सूक्ष्म।

यह तो अगाध सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा सर्वज्ञ प्रभु एक सेकण्ड के असंख्य भाग में तीनकाल, तीनलोक को जाने ऐसी अपनी पर्याय का सामर्थ - उसे जाने यह कहना व्यवहार है। ऐसी सर्वज्ञ दशा जहाँ प्रगट हुई और इच्छा बिना वाणी का प्रवाह निकला उस वाणीमें से शास्त्र रचा। उस शास्त्र में से यह भाग अवयव है उसका, समयसार।

**मुख ओमकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे,** भगवान के मुखमें से वाणी ओम... ध्वनि, दिव्यध्वनि, प्रधान आवाज उसको सुनकर संतों ने आगम की रचना की है, **रची आगम उपदेश भाविक जीव संशय निवारे,** आहाहा ! यह आगम से सुनकर भव्य लायक प्राणी संशय का नाश करे। आहाहा ! समझ में आया ? अरे ! ऐसी बातें।

**'उससे भिन्न कुछ नहीं कहा जाता'** व्यवहार ज्ञान है। इसको भले हमने व्यवहार कहा, परंतु उस व्यवहार ने बताया तो त्रिकाली ज्ञायक को, उससे कुछ भिन्न चीज तो बताई नहीं उसने। आहाहा ! ज्ञान स्वभाव जो पर्याय में स्व और पर को जानने की ताकतवाला ज्ञान कहा, यह तो स्वपरप्रकाशक है न ? फिर भी यह स्वपरप्रकाशक ज्ञान की पर्याय आत्मा के साथ संबंध रखती है। यह परमार्थ आत्मा को बताती है। यह स्वपरप्रकाशक ज्ञान की पर्याय, यह बताती संबंध रखती है आत्मा के साथ। यह स्वपरप्रकाशक ज्ञान पर के साथ संबंध नहीं रखता। आहाहाहा ! समझ में आया ? कितना याद रखना ? एक घण्टे में, बहुत सूक्ष्म बापा ! आहा ! अलौकिक चीज है। आहाहा !

कहते हैं - इसप्रकार ज्ञान और ज्ञानी के भेद से... पर्याय ज्ञान और ज्ञानी द्रव्य, ऐसे भेद से कहनेवाला व्यवहार, उससे भी परमार्थ मात्र ही कहा जाता है। इस ज्ञान ने बताया कि यह आत्मा, ऐसे परमार्थ त्रिकाली स्वरूप को ज्ञान जानता है तब उसने व्यवहार से निश्चय को बताया व्यवहार ने परमार्थ को बताया। व्यवहार शब्द (समझना) वर्तमानज्ञान की पर्याय उसने परमार्थ त्रिकाल को बताया। आहाहाहा ! यह सूक्ष्म लगे, इसलिये लोग व्रत एवं तप तथा उपवास और भक्ति में जुड़ गये और उसमें धर्म मानने लगे... आहाहाहा !

यहाँ तो ज्ञान की पर्याय जो है वह पर्याय भी स्व के साथ संबंध रखती है, तब भेद करके बताया, परंतु ज्ञान सो आत्मा, यहाँ आत्मा को बताया। भले ज्ञान भेद करके कि... यह ज्ञान सो आत्मा। यह ज्ञान यह व्यवहार वर्तमान, परंतु उसे जानन वह निश्चय, परंतु इस ज्ञान ने निश्चय को बताया कि यह त्रिकाली वस्तु वह मैं हूँ। आहाहाहा ! समझ में आया ? - ऐसा जब ज्ञान अंदर में हो तब उसको

अतीन्द्रिय आनंद आता है, यह अतीन्द्रिय आनंद की पर्याय भी वर्तमान है तो व्यवहार कहा जाता है, परंतु वह पर्याय बताती है अतीन्द्रिय स्वरूप भगवान आत्मा के साथ संबंध है। इस आनंद का संबंध कोई राग और पर के साथ नहीं। आहाहा ! यहाँ तो ज्ञान लिया न (वह ज्ञान) स्वपरप्रकाशक है आनंद में तो कोई स्वपर (प्रकाशक) है नहीं। आहाहाहा !

तब यह ज्ञान में स्व को जानने की ताकत और पर को जानने की ताकत वर्तमान में हो ! यह वर्तमान ज्ञान, फिर भी फिर भी यह स्व पर के जानने की ताकतवाला ज्ञान वर्तमान, यह तो त्रिकाली को बताता है। यह ज्ञान राग की और शरीर की प्रसिद्धि करते है - ऐसा नहीं। ***यह ज्ञान स्वपरप्रकाशक होने से राग को जाने, शरीर को जाने, वाणी को जाने - ऐसा कहना वह असद्भूत व्यवहार है। यह ज्ञान की पर्याय (स्वयं) ज्ञान को जानती है इस पर्याय में स्वपरप्रकाशकपना ज्ञात होता है, इस स्वपरप्रकाशक ज्ञान को यहाँ व्यवहार कहा क्योंकि ज्ञान और ज्ञानी का भेद बताया, परंतु भेद बताकर भी यह ज्ञान आत्मा की प्रसिद्धि करता है।*** आहा ! कि यह ज्ञान सो आत्मा त्रिकाली प्रभु पूर्णानंद अंदर है। आहाहा ! ऐसी बात है।

यह फिर से लिया, परंतु चाहे जितनी बार लें, फर्क थोड़ा भाषा का आता है, वस्तु तो जो है यह है, वस्तु तो... साधारण प्राणी तो - ऐसा कहें कि ***सम्यग्दर्शन तो केवलीगम्य है, केवलीगम्य है ऐसा, अष्टपाहुड़ में लिया है। परंतु फिर भी यह सम्यग्दर्शन अनुभूति द्वारा जानने में आता है इसलिये व्यवहार कहा। सम्यग्दर्शन सीधी बात है यह निर्विकल्प प्रतीति है वह जानने में नहीं आती। परंतु साथ में (जो) अनुभूति होती है जो ज्ञान आत्मा का अनुभव करे उस ज्ञानानुभूति उस अनुभूति के साथ सम्यग्दर्शन है तो अनुभूति से सम्यग्दर्शन जानने में आता है, इसके लिये उसे व्यवहार कहने में आया। सीधा सम्यग्दर्शन जानने में नहीं आता है। क्योंकि यह तो निर्विकल्प अवस्थारूप चीज है। यह सम्यग्दर्शन स्वयं को नहीं जानता, साथ में ज्ञान को नहीं जानता, परंतु ज्ञानानुभूति हुई उस ज्ञान में जानने में आया कि यह समकित है और उसका विषय यह त्रिकाली है यह अनुभूति से जानने में आया।*** समझ में आया ? समझ में आया ? आहाहा ! यहाँ तो अनुभूति की पर्याय को भेद करके कहना यह भी व्यवहार है, परंतु वह व्यवहार अनुभूति के समय है द्रव्य को, यह द्रव्य की अनुभूति, यह द्रव्य ! समझ में आया ? परंतु यहाँ तो ज्ञान से बात चली है क्योंकि जानने की वस्तु तो यह है, सम्यग्दर्शन, चारित्र आनंद कोई (कुछ) जानता नहीं, है इतना, यह है परंतु जाने, ज्ञान तब ज्ञान की प्रधानता से कथन किया है यहाँ। आहा ! समझ में आया ?

इसप्रकार ज्ञान और ज्ञानी के भेद से कहनेवाला जो व्यवहार यह उससे भी परमार्थ ही कहा जाता है। आत्मा ही कहने में आया है। आहा ! ज्ञान..... सो आत्मा, ज्ञान..... सो राग - ऐसा न कहा। ज्ञान सो शरीर (- ऐसा न कहा) ज्ञान सो आत्मा। ***राग का ज्ञान हुआ परंतु ज्ञान हुआ सो ज्ञान सो राग- ऐसा नहीं। राग का ज्ञान हुआ। यह तो स्वपरप्रकाशक शक्ति के कारण, फिर भी यहाँ ज्ञान सो आत्मा।*** समझ में आया ? आहाहा ! ऐसी बातें है। बारह गाथायें पूरे समयसार की पीठिका है। मूल-मूल अर्थात एक-एक गाथा में एक-एक बात गजब गंभीरता ! अंत न आये ऐसी चीज है। आहाहा !

शरीर वाणी मन तो जड़ है और दया, दान, व्रत, भक्ति आदि का परमात्मा के स्मरण आदि का भाव यह राग है, उसमें तो ज्ञान है नहीं। जब उसमें ज्ञान है नहीं तब राग सो आत्मा - ऐसा नहीं होता, परंतु राग का ज्ञान हुआ और स्वयं का ज्ञान हुआ यह ज्ञान सो आत्मा, तो व्यवहार ने भी निश्चय को बताया परमार्थ को, व्यवहार ने व्यवहार को बताया है - ऐसा नहीं। आहाहा ! छोटा भाई ! - ऐसा सूक्ष्म है और जो श्रुतज्ञान से केवलशुद्धात्मा को जाने यह श्रुतकेवली हैं। इसप्रकार है। आ गया न ! इससे भिन्न कुछ नहीं कहा जाता।

और जो श्रुत से केवल शुद्धात्मा को जानते हैं। भावश्रुतज्ञान से जो सीधा आत्मा को जानता है यह श्रुतकेवली है। यह परमार्थ हुआ। इसप्रकार परमार्थ का प्रतिपादन करना अशक्य होने से... अकेला परमार्थ का प्रतिपादन... यह आत्मा, यह आत्मा - ऐसा कहने से समझ सकें नहीं, असंभव है, तब इतना भेद करके कहा। यह `ज्ञान सो आत्मा' इतना व्यवहार कह कर बताया। यह आत्मा, आत्मा कहें परंतु यह आत्मा क्या ? तब परमार्थ आत्मा को कहना अशक्य है, हाँ। परमार्थ का प्रतिपादन करना-कहना अशक्य होने से **`जो सर्व श्रुत को जानते हैं वह श्रुतकेवली'** आहाहा ! - ऐसा व्यवहार... जो ज्ञान स्व और पर को जाने यह ज्ञान, श्रुतकेवली को जानते हैं, सर्वश्रुतज्ञान को जानते हैं, वे श्रुतकेवली है यह व्यवहार कहा। **`- ऐसा व्यवहार परमार्थ के प्रतिपादकत्व से अपने को दृढ़तापूर्वक स्थापित करता है।'** व्यवहार है यह बात स्थापित करते हैं। परंतु व्यवहार बताता है निश्चय को। आहाहाहा ! समझ में आया ? ऐसी बाते है - व्यवहार है, व्यवहार स्थापित करते है, ***व्यवहार (का) अस्तित्व है परंतु वह व्यवहार बताते तो है परमार्थ को, ज्ञान सो आत्मा - ऐसा भेद करके बताया आत्मा।*** ज्ञान सो ज्ञान, ज्ञान सो ज्ञान, यह तो भेद हो गया। ज्ञान सो आत्मा आहाहा !

ऐसा भेद करके व्यवहार ने भी परमार्थ को बताया... प्रवीणभाई ! यह व्यवहार परमार्थ के कथन के कारण अपने को दृढ़तापूर्वक स्थापित करता है। देखो ! उसमें

पहले यह आया था। आया था न (गाथा) आठ में ? व्यवहार को परमार्थ का कहनेवाला जानकर उसका उपदेश दिया जाता है, गाथा में - ऐसा आया है। देखो, गाथा इसलिये व्यवहारनय स्थापित करने योग्य है। आठवीं गाथा में, टीका का आखरी शब्द इसलिये व्यवहारनय स्थापित करने योग्य है। हाँ ! आठवीं गाथा की टीका का आखरी शब्द, टीका लिया, भावार्थ का नहीं। भावार्थ के ऊपर !

व्यवहारनय स्थापित करने योग्य है। है - ऐसा सिद्ध करना है किन्तु व्यवहार... है ? ब्राह्मण को म्लेच्छ नहीं हो जाना चाहिए, इस वचन से व्यवहारनय अनुसरण करने योग्य नहीं है। व्यवहार है - ऐसा स्थापित करने लायक है, परंतु व्यवहार अनुसरण करने लायक नहीं। अनुसरण करने लायक नहीं, अनुसरण करने लायक वस्तु (आत्मद्रव्य) आहाहा ! इसमें सभी अंजान लगता। लगे अंजान देश में आये हों, हाँ ! (श्रोता :- भगवान के देश में जानेवाले है) परमात्म स्वरूप अंदर... आहाहा ! यह ज्ञान सो आत्मा - ऐसा भेद हुआ इसलिये ज्ञान को व्यवहार कहा। परंतु वह व्यवहार क्या बताये ? आत्मा को, परमार्थ को बताये... व्यवहार ने राग को और शरीर को बताया नहीं। आहाहाहा !

बारहवीं गाथा में आयेगा कि जिसको अपने स्वरूप की अनुभव दृष्टि प्रतीति हुई, अनुभव करके प्रतीति हुई अपने आत्मा की, उसने तो निश्चय का आश्रय लिया, अब उसकी पर्याय में अपूर्णता अशुद्धता अल्प है, अशुद्धता भी है। इसको क्या कहना ? कि वह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, यह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। व्यवहार अपना माना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा नहीं। यह आगे आयेगा बारहवीं (गाथा में)। चारों ओर से बात वहाँ ली, कहा कि राग और अल्पज्ञ जाना हुआ प्रयोजनवान है, इतना भी यहाँ यह कहा कि जो अल्पज्ञ अवस्था, स्व और पर को जाने वह ज्ञान आत्मा को प्रसिद्ध करते हैं इसलिये उसको व्यवहार कहा जाता है। यह ज्ञान राग को जाने, जाने इसलिये ज्ञान राग के साथ संबंध रखता है... पर को जाने इसलिये पर के साथ संबंध रखते है - ऐसा नहीं। आहाहाहाहा ! गजब शैली है !!

समयसार की एक-एक गाथा भरतक्षेत्र में तो अभी इसके अलावा कोई दूसरी चीज नहीं ऊंची। आहाहा ! परंतु इसके लिये बहुत पुरुषार्थ... स्वभाव को समझने के लिये बहुत निवृत्ति चाहिए। आहाहा ! एक L. L. B. और M. A. पढ़ने के लिये भी समय गंवाता न ? पाँच-दश वर्ष, धूल के लिये। आहाहा ! तब यह तो प्रभु जिससे जन्म-मरण रहित होना (है) और जन्म-मरण जिसमें है नहीं, ऐसी चीज समझने में कौन-सी विधि व्यवहार और कौन-सी विधि निश्चय, यह उसको समझना चाहिए।

बड़ा झगड़ा यह। देखो यहाँ उसमें आया था न कि व्यवहार स्थापित करने

योग्य है। आठवीं (गाथा) में यहाँ भी यही कहा है। यह यहाँ व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादन करते (है) अपने को दृढ़तापूर्वक स्थापित करते हैं - ऐसा लिया। व्यवहार है - ऐसा व्यवहारनय स्थापित करता है परंतु वह व्यवहार बताता है - ऐसा व्यवहारनय स्थापित करता है परंतु वह व्यवहार बताता है निश्चय को आहाहा ! ज्ञान की पर्याय है, यह व्यवहार है तब व्यवहार स्थापित करना योग्य है। कारण कि व्यवहार है, उसका विषय भी है, परंतु व्यवहार के विषय को व्यवहार कहा वह तो आत्मा का ज्ञान कराने को कहा, उसीका ज्ञान कराने को कहा इतना नहीं। आहाहाहा ! व्यवहार ज्ञान को जानता है, व्यवहार ज्ञान, रागादिक को परंतु यह ज्ञान आत्मा को जानता है यह निश्चय और यह ज्ञान राग को जानता है यह व्यवहार, परंतु राग को जानता है फिर भी ज्ञान राग का हुआ नहीं। राग का ज्ञान हुआ तो (क्या) ज्ञान राग का हुआ ? राग है तब क्या उसके कारण से यहाँ ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं। समझ में आया ?

(श्रोता :- आप रोज नई-नई बात करते हैं - ऐसा वक्ता ऐसी ही (कला होना चाहिए) - ऐसा है भैयाजी ! आहाहा ! तीन लोक का नाथ, सर्वज्ञ की वाणी यह है, भाई क्या कहें। आहाहा ! परमात्मा तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव उनसे सुनी हुई वाणी, संत शास्त्र रचकर बताते हैं। आहाहा !

यह अंदर में थोड़ा जाय (तो) ख्याल आये, तब उसको उसकी महिमा ख्याल आती है। आहाहा ! - ऐसा व्यवहार परमार्थ को, व्यवहार परमार्थ का प्रतिपादकत्व होने से। व्यवहार व्यवहार को बताने के लिये नहीं। आहाहाहा ! ज्ञान... यह व्यवहार, त्रिकाली वस्तु वह निश्चय, यह ज्ञान बताता है त्रिकाली को इसलिये व्यवहार स्थापन करने योग्य है, व्यवहार आता है, व्यवहार है परंतु व्यवहार आश्रय करने लायक है - ऐसा नहीं, आश्रय करने लायक व्यवहार कहते हैं कि त्रिकाली का आश्रय कर ! यह वस्तु अखण्डानंद प्रभु, **प्रतिपादकत्व से अपने को दृढ़तापूर्वक स्थापित करता है। लो उसका भावार्थ आयेगा लो।** (प्रमाण वचन गुरुदेव !)